ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-8* September- 2021
Innovation The Research Concept

ऊपरी केन बेसिन में स्थलरूपों के विकास का अध्ययन

Study of the Evolution of landforms in the Upper Cane Basin

Submission:15/09/2021, Date of Acceptance: 23/09/2021, Date of Publication: 24/09//2021

ललित कुमार दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर,
भूगोल विभाग,
आर0पी0पी0जी कालेज,
कमालगंज, फर्रूखाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

अध्ययन प्रदेश ऊपरी केन बेसिन की संरचना मुख्यतः विध्यंन क्रम की शैलों पर आधारित हैं और संरचना के द्वारा ही स्थलाकृतियों की उत्पत्ति विकास एवं वर्तमान स्वरूप का विष्लेशण किया जा सकता है क्योंकि संरचना स्थलरूपों के विकास में प्रधान नियंत्रक कारक होती है तथा स्थलरूपो का विकास संरचना प्रक्रम और अवस्था का प्रतिफल होता है। अध्ययन प्रदेश में जलीय प्रक्रम अर्थात केन नदी ने अपरदन परिवहन तथा निक्षेपण द्वारा वी आकार की घाटी, गार्ज, कैनियन, जलप्रपात, छिप्रिका, कगार, रूण्डित स्पर, बीहड़, मोनाडॅनाक आदि स्थलरूपों का निर्माण एवं विकास किया है।

The structure of the Upper Ken Basin is mainly based on the rocks of the study area and only through the structure, the origin, development and present form of topography can be analyzed.Because structure is the main controlling factor in the development of landforms and the development of landforms is a product of the structure process and stage. In the study area, the water process i.e. Ken river has created and developed V-shaped valley, gorge, canyon, waterfall, ridge, verge, rune spur, ravine, mundane etc. Land form through erosion transport and deposition

मुख्य शब्दः संकल्पना, नदी घाटी, गार्ज, कंगार, मोनाडनॉक
Concept, River Valley, Garage, Kangar, Monadnock.

प्रस्तावना

ऊपरी केन बेसिन मध्य प्रदेश के उत्तरी पष्चिमी भाग पर 23° 50 उत्तरी अक्षांश से 24° 30 उत्तरी अक्षांश तक तथा 80° 10 पूर्वी देशान्तर से 80° 38 पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है, जिसका संपूर्ण क्षेत्रफल 2022 वर्ग किमी है। विंध्याचल बघेलखण्ड प्रदेश के विषिश्ट भू क्षेत्र वाले इस पठार की अधिकतम लम्बाई उत्तर पूर्व से दक्षिण पष्चिम में 60 किमी तथा अधिकतम चैड़ाई उत्तर पष्चिम से दक्षिण पूर्व में 45 किमी है।

अध्ययन क्षेत्र के उत्तर पष्चिम में पन्ना जनपद, उत्तर पूर्व में सतना तथा दक्षिण में दमोह एवं मुरवारा जनपद स्थित है। अध्ययन क्षेत्र की दक्षिण पूर्वी सीमा का निर्धारण टोंस के उद्गम क्षेत्र में स्थित जल विभाजक द्वारा उत्तरी सीमा का निर्धारण मीरहासन नदी द्वारा तथा पष्चिमी एवं दक्षिणी सीमा का सीमांकन पटने एवं सतना नदी द्वारा होता है। यह प्रदेश मुख्यतः केन के अपवाह क्षेत्र पर विस्तृत है जहां इनकी विभिन्न सहायक सरितायें पठार से निकल कर इनमें मिलती हैं। केन की प्रमुख सहायक नदियां क्वलरहा, सिमरडा, टिर्री कासा, बोरा, धोबा, कटिया आदि हैं। अध्ययन क्षेत्र की न्यूनतम ऊंचाई 300 मीटर तथा अधिकतम ऊंचाई 640 मीटर है।

अध्ययन प्रदेश की भूगर्भिक संरचना मुख्यतः ऊपरी एवं निचले विंध्यन क्रम की शैलों पर आधारित है। यद्यपि यहां के आधार तल पर आर्कियन युग की ग्रेनाइट एवं नीष चट्टाने विद्यमान है जो विध्ंयन क्रम द्वारा पूर्णतः आच्छादित है। अध्ययन क्षेत्र की संरचना के अध्ययन द्वारा ही हम भूपृष्ठीय स्थलाकृतियों की उत्पत्ति, विकास एवं वर्तमान स्वरूप का विष्लेशण करने में समर्थ हो पाते हैं, साथ ही अपवाह तंत्र की जटिल समस्याओं का निराकरण करने में समर्थ हो पाते हैं साथ ही अपवाह की जटिल समसयाओं का भी निराकरण करने में सक्षम हो सकते हैं, क्योंकि संरचना स्थल रूपों के विकास मे प्रधान नियंत्रक कारक होते हुये उनमें प्रतिबिम्बित होती है, तथा अपवाह तंत्र के विकास को प्रभावित करती हैं। अध्ययन क्षेत्र की संरचना विभिन्न भूगर्भिक कालों में घटित विवर्तनिक घटनाओं के जटिल प्रभावों का परिणाम है जो पूर्व कैम्ब्रियन युग से वर्तमान काल तक न्यूनाधिक तीव्रता में सक्रिय रहे हैं यह भूखण्ड मूलतः दक्कन प्रायद्वीप के उत्तरी भाग पर अवस्थित है तथा प्राचीन गोण्डवाना दृढ़ भूखण्ड का अभिन्न अंग है और आर्कियन युग से वर्तमान काल तक की घटनाओं से प्रभावित रहा है जिससे यहां आधारीय ग्रेनाइट एवं नीष का अन्तर्वेधन, विध्यन सागर में अवसादों का निक्षेपण, दक्कन ट्रैप के लावा प्रवाह एवं वर्तमान काल के लैटराइट, स्वस्थानिक लाल एवं लैटराइट, स्वास्थनिक लाल एवं पीली मिट्टियों तथा नदी बेसिनों के नूतन जलोढ़ के जमाव समय समय पर होते रहे हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

स्थलरूपों के विकास के अध्ययन में भू पदार्थों एवं भ्वाकृतिक प्रक्रमों के अध्ययन को भी महत्व दिया जाता है। क्योंकि भू पदार्थ का अर्थ शैल की प्रकृति, षैल की संरचना और विषेशता से लिया जाता है। संरचना ही स्थलरूपों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है तथा स्थलरूप उसमें प्रतिबिंबित होता है। ऊपरी केन बेसिन प्रदेश मे स्थलरूपों के विकास का प्रमुख उद्देश्य निम्न है-

1. स्थलरूपों के विकास की संकल्पनाओं का संक्षिप्त उल्लेख करना।
2. स्थलरूपों के विकास का विषद्वर्णन करना।

विधितंत्र

स्थलरूपों के विकास के प्रथम वास्तवितक एवं सार्विक सिद्वांत का प्रतिपादन डेविस द्वारा भौगोलिक चक्र के रूप में 1899 में किया गया। प्रारंभ में डेविस ने अपने भौगोलिक चक्र का प्रतिपादन आद्र षीतोश्ण प्रदेशों के स्थलरूपों के विकास की व्याख्या के लिये किया था परंतु आगे चलकर इस चक्रीय संकल्पना का प्रयोग षुश्क प्रदेशों (डेविस, 1903, 1905 एवं 1930) हिमानी क्षेत्रों (डेविस, 1900, 1906) सागरतटीय प्रदेशों (डेविस 1912, जानसन 1919) कास्ट प्रदेश (वीदी, 1911 स्वीजिन, 1948) तथा परिहिमानी क्षेत्रों (पेल्टियर 1950) में स्थलरूपों के विकास की व्याख्या के लिये भी किया गया। जिससे डेविस के अपरदन चक्र का सिद्वांत कमजोर पड़ता गया परिणाम स्वरूप पेंक का भवाकृतिक सिस्टम (1924) क्रिकमे का पैंन प्लेक्षन चक्र (1933, 1959, 1977) एल0सी0 किंग का पेडीप्लेनेषन चक्र (1948), भ्वाकृतिक सिस्टम (1953, 62ए 1963 एवं 1967) पुघ का सबाना अपरदन चक्र (1966) आदि सिद्वांत स्थलरूपों के विकास की व्याख्या के लिये प्रकाष में आये। आगे चलकर समय के परिवेष में स्थलरूपों के विकास से संबंधित गतिक संतुलन सिद्वांत (स्ट्रालर 1950, 1952, हैक 1960, 1965, 1975, चोर्ले 1962) का प्रतिपादन किया गया। इसके अलावा भ्वाकृतिक सीमान्त सिद्वांत विवर्तनिक स्थलरूप सिद्वांत खण्डकालिक अपरदन सिद्वांत भी स्थलरूपों के विकास में संबंधित रहे। उपरोक्त सिद्वांतो एवं संकल्पनाओं के अलावा लेखक ने अध्ययन क्षेत्र में प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा स्थलरूपों के विकास की संकल्पना में द्वितीयक आंकड़ो का प्रयोग किया है। उपरोक्त संकल्पनाओं व सिद्वांतो के अतिरिक्त लेखक ने अध्ययन क्षेत्र के प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा स्थलरूपों के विकास में अपनी मान्यताओं का प्रयोग किया है।

व्याख्या एवं विश्लेषण

सामान्यतः यह समझाा जाता है कि प्रक्रमों के परिचालन दर में परिवर्तन के रूप में प्रभाव अवष्य होता है। या कभी कभी मृत समय होता है जबकि स्थल रूप में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता है (जे0बी0 थार्न्स, 1979)। भ्वाकृति तंत्र की स्थलाकृतिक विषेशताओं तथा स्थलरूपों के विकास की व्याख्या में भवाकृतिक समय एवं स्थानिक मापक महत्वपूर्ण विचर होते है तथा स्थलाकृति समय एवं स्थान का प्रतिफल होती है (षूम और लिटी, 1972)। वर्तमान समय में जो भगर्भिक प्रक्रम तथा नियम कार्यरत हैं, वे ही समस्त भूगर्भिक इतिहास में कार्यरत थे परन्तु उनकी सक्रियता में अन्तर था। स्थलरूपों के विकास में भौमिकीय संरचना एक महत्वपूर्ण नियंत्रक कारक होती है तथा इनमें प्रतिबिम्बित होती है। भ्वाकृतिक प्रक्रम स्थलरूपों पर अपनी विषेश छाप छोड़ते है तथा प्रत्येक भवाकृतिक प्रक्रम स्वयं का स्थलरूपों का विषिश्ट समुदाय विकसित करता है। जैसे ही भूतल पर विभिन्न अपरदनात्मक कारक कार्यरत होते हैं, क्रमिक स्थलरूपों जिनके विकास की क्रमिक अवस्थाओं में विषिश्ट विषेशतायें होती है, का निर्माण होता है। स्थलरूपों के विकास में सरलता की अपेक्षा जटिलतायें अधिक होती है। धरातल की बहुत कम स्थलाकृतियां टर्षियरी युग से प्राचीन है तथा अधिकांष स्थलाकृति प्लीस्टोसीन युग से प्राचीन नहीं हैं, (थार्नबरी, 1984)। वस्तुतः स्थलरूपों में समय के साथ क्रमिक परिवर्तन होते हैं तथा यह परिवर्तन एक सुनिष्चित दिषा में सुनिष्चित लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है डेविस (1899)। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने अपने अलोच्य क्षेत्रों में स्थलरूपों के वर्गीकरण के लिये अलग अलग आधार अपनाये हैं। अपरदन का सामान्य चक्र किसी भी उत्थित स्थलखण्ड पर प्रारंभ होता है। स्थलखण्ड का उत्थान अपरदन के साथ साथ कुछ समय तक चलता रहता है। ऊपरी केन बेसिन उश्णार्द मानसूनी जलवायु के अंतर्गत है, जहां वर्शा के कारण वाही जल नदियों को मिलता रहता है। उपर्युक्त परिस्थिति में उत्थित स्थलखण्ड तीन अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

सर्वप्रथम ढाल के अनुसार अनुवर्ती नदियों का अविर्भाव होता है। प्रारंभ में ये नदियां अत्यधिक कम गहरी तथा लम्बाई में छोटी होती है। नदियों की अपेक्षा ढालों पर असंख्य अवनलिकायें तथा छोटी छोटी सरितायें होती है। ये जल धारायें षीर्शवर्ती अपरदन द्वारा अपनी लम्बाई में विस्तार करती है। धीरे धीरे मुख्य नदियां अपनी घाटी को गहरा करना प्रारंभ कर देती हैं तथा उनकी सहायक सरिताओं का भी विकास हो जाने पर पादपाकार जलप्रवाह प्रणाली का विकास होता है। इस अवस्था में निम्न कटाव (लम्बवत अपरदन अथवा घाटी गर्तन) द्वारा नदियों की घाटी अत्यंत गहरी होती जाती है जिससे नदियां संकरे एवं गहरे गार्जों अथवा कन्दराओं से होकर प्रवाहित होती हैं। इनकी गहराई चैड़ाई की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। किनारों की दीवालें खड़ी होती है।

जैसे ही नदी अपरदन चक्र की तरूणावस्था को समाप्त करके प्रौढ़ावस्था में पर्दापण करती है, स्थलरूपों में प्र्याप्त अंतर होने लगता है, नदी ढाल में कमी होने के कारण नदी का वेग बहुत कम हो जाता है। लम्बवत अपरदन की अपेक्षा क्षैतिज अपरदन प्रारंभ हो जाता है। जैसे ही नदी ऊपरी ढाल से मैदान में बहने लगती है, वैसे ही ढाल के निचले भाग में जलोढ़ पंख तथा जलोढ़ षकुओं का निर्माण होने लगता है। धीरे धीरे कई जलोढ़ पंख विस्तृत होकर एक दूसरे से मिल जाते हैं तथा एक विस्तृत गिरिपदीय जलोढ़ मैदान की रचना होती है। धोबा नाला में पाष्र्ववर्ती अपरदन के कारण निर्मित विसर्प और खड़ा ढाल, क्वलरहा नाला में अपरदन के कारण विसर्पण और जलप्लावन के कारण अपरदन में अवरोध उत्पन्न होता है जिसके कारण सरितायें विसर्पित मार्गों से प्रवाहित होती है और नदियां समतल भाग में प्रवाहित होने के कारण टेढ़े मेढ़े मार्गों का अनुसरण करती है तथा विषाल विसर्पों से होकर प्रवाहित होती हैं। निक्षेप द्वारा बाढ़ के मैदानों का सृजन होता है। मोड़ों के अधिक घुमावदार हो जाने के कारण नदी अपने घुमाव को छोड़कर सीधे रूपप्रवाहित होने लगती हैं जिससे परित्यक्त घुमाव में जल एकत्र हो जाता है, जिसे गोखुर झील कहते हैं। नदियों के किनारों पर तलछटीय जमाव के कारण कहीं कही पर तटबंधो का निर्माण हो जाता है चूकिं ये प्राकृतिक रूप से बाढ़ों से रक्षा करते हैं अतः इन्हें प्राकृतिक तटबन्ध कहा जाता है।

इस अवस्था में निम्न कटाव पूर्णतया समाप्त हो जाता है, अपक्षय का कार्य अधिक सक्रिय रहता है, क्षैतिज अपरदन तथा अपक्षय मिलकर स्थल खण्ड को नीचा करने में सतत सक्रिय रहते हैं। नदी बाढ़ का मैदान अत्यधिक विस्तृत हो जाता है,जिससे नदियंा अत्यंत मन्दगति से प्रवाहित होती है। नदी के वेग में अत्यंत कमी हो जाने के कारण उनकी परिवहन षक्ति कम हो जाती है साथ ही नदी के बोझ में अधिक बृद्धि हुई रहती है, इस कारण निक्षेप अधिक होता है। इस तरह समस्त क्षेत्र अपने आधार तल को प्राप्त कर एक समतल मैदान या सम्प्राय मैदान में बदल जाता है, जिनमें यत्र-तत्र कुछ टीलें दिखाई देते हैं जिसे मोनॉडनाक कहा जाता है। इस स्थिति के प्राप्त हो जाने पर अपरदन चक्र समाप्त हो जाता है, यद्यपि इस तरह का पूर्ण चक्र तभी संभव हो सकता है जबकि स्थलखण्ड दीर्घकाल तक स्थिर हो परन्तु ऐसा ऊपरी केन बेसिन में नहीं हो सका है। केन नदी घाटी क्षेत्र में नवोन्मेश के कारण पुनः तरूणावस्था का लक्षण दिखाई देता है। केन नदी अभी तक अपरदन करके अंतिम प्रौढ़ावस्था तक पहुंची है। यहां तीनों अवस्थाओं के प्रमाण नहीं मिलते, परन्तु दक्षिणी पूर्वी और पष्चिमी परिधीय भागों में सरितायें जो संरचना और ढाल की देन है, तरूणावस्था की प्रतीक मानी जा सकती है। वर्शा का जो जल धरातल पर किसी न किसी रूप में बहने लगता है उसे वाही जल कहते है। जब वाही जल एक निष्चित ऊंचाई से निचले ढाल की ओर गुरूत्वाकर्शण के कारण प्रवाहित होता है उसे नदी या सरिता कहते है। केन भी इसी प्रकार की स्थायी नदी है जो अपने उद्गम से मुहाने तक त्रिकल कार्य अर्थात अपरदन, परिवहन तथा निक्षेप करती है। केन नदी ने अपने प्रवाह क्षेत्र में चार प्रमुख कार्यों का सहारा लिया है जिनमें प्रमुख हैं - घोलीकरण या संक्षारण, अपघर्शण, सन्निघर्शण और जलगति क्रिया। ऊपरी केन के अपरदन कार्य में इस नदी घाटी के किनारों की संरचना ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चूकिं अध्ययन क्षेत्र. के अधिकांष स्थानों पर ढाल तीव्र होने के कारण इन किनारो के बड़े बड़े भाग भूमि ढलान, अवपात, मृदा सर्पण आदि के कारण सरककर नीचे आते रहते हैं। स्पश्टतः अपक्षय तथा द्रव्यमान संचलन केन अपवाह क्षेत्र में अपरदन सहायक के रूप में मिलते हैं। चिरहट संरक्षित वन ऊपरी केन के संरक्षित वन तथा सिमर्दा नदी के प्रवाह क्षेत्र में अपक्षय तथा द्रव्यमान संचलन के अधिक प्रमाण देखने को मिलता है। केन ने अपने संपूर्ण मार्ग में क्रमषः लम्बवत अपरदन, षीर्शवर्ती अपरदन, पाष्र्ववर्ती अपरदन का उपयोग स्थलाकृतियों के निर्माण हेतु किया है। अवसाद भार परिवहन की क्रिया के समय प्रमुख रूप से चार प्रकार से चलते हुये नजर आते हैं- 1. घर्शण के रूप में (लुढ़ककर) 2. उत्परिवर्तन के रूप में (उछल-उछल) कर 3. लटककर 4. घुलकर केन ने अपने मार्ग में निक्षेपण की क्रिया भी सफलतापूर्वक संपन्न की है। केन नदी ने उदगम से मुहाने तक के अपरदन जनित स्थलरूप निम्न हैं यथा वी आकार की घाटी, गार्ज कैनियन, जलप्रताप, क्षिप्रिका, जलजगर्तिका, संरचनात्मक सोपान, बीहड़, रूण्डित स्पर, कगार, घाटी पाष्व टार्स, सोपानी जलप्रताप आदि। इसके अलावा केन नदी द्वारा निक्षेप जनित स्थलरूपों में बाढ़कृत मैदान सर्वप्रमुख है।

ऊपरी केन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थलाकृतिक विषेशता यहां के कगार है, जो पूरब, उत्तर एवं पष्चिम सीमान्तीय भाग में अवस्थित है। कगारों की विषेशता एवं प्रकृति का निर्धारण उन षैल संस्तरों की प्रकृति एवं नति द्वारा होता है, जिन पर इनकी रचना हुई है। जहां बालुका प्रस्तर आवरण के नीचे षेल की स्थिति है वहां भृगु के रूप में अधः कर्तित ढाल का विकास हुआ है, तथा जहां कगार पर केवल कठोर बालुका प्रस्तर का ही विस्तार है, वहां दृढ़ कगारी सतह विकसित हुई है। जिसका ढाल 70 डिग्री से अधिक है।

अध्ययन क्षेत्र में कगार के सहारे अनेक जलप्रताप पाये जाते हैं, जिनकी ऊंचाई 8 मीटर से 85 मीटर तक है। अधिक ऊंचे जल प्रपात कगार के षीर्शवर्ती भाग पर पाये जाते हैं, जैसे काषा प्रपात 60 मीटर ऊंचा है तथा काषा सरिता पर विकसित है। इसी प्रकार खभरी गांव के पास

40 मीटर ऊंचा दानवबाबा जल प्रपात बर्बइया नदी पर स्थित है इसी प्रकार कगारों से उतरने वाली नदियं अनेक मौसमी जलप्रपातों की रचना करती है। यहां की सभी सरिताओं पर जल प्रपात मिलते हैं, जिनकी ऊंचाई भिन्न-भिन्न हैं तथा इनमें पृश्ठवर्ती निर्वतन हो रहा है। पृश्ठवर्ती अपरदन के कारण नीचे की षेल संरचना षीघ्रातिषीघ्र अपरदित हो जाती है और ऊपरी बालुका प्रस्तर संरचना लटकती दिखाई देती है जो गुरूत्व ढाल, रासायनिक अपक्षय तथा पिण्ड विखण्डन के कारण टूट जाती है और जल प्रपात पीछे हट जाते हैं। बालुका पत्थर के नीचे षेल संरचना के कारण ही जल प्रपातों में अन्डरकट ढाल पाये जाते हैं।

ऊपरी केन नदी पर जल विभाजकों के रूप में लम्बे, संकरे तीव्र ढाल युक्त कटक विद्यमान है। जिनका आक्सीडेषन और रस्टिंग के कारण तीव्र रासायनिक अपक्षय हो रहा है। इसी प्रकार का एक विच्छेदित अनावृत कटक अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में स्थित है जो पूर्णतः वनस्पति विहीन है तथा जहां से केन एवं उसकी लघु सहायक सरितायें सिमर्दा, कासा, बासा आदि उदभवित होती हैं। ये विच्छेदित कटक तीक्ष्ण कटक के रूप में है। वर्शाकाल में तीव्र स्थलोपरि प्रवाह से अधिकाधिक प्रभिावत होता है तथा इस कटक पर अनेक नुकीले षीर्श, टार्स और विखण्डित बालुका पत्थर के गोलाष्म, कंकड़ पत्थर के टुकड़े पाये जाते है। मुख्य पठार से एकाकी कतिपय पहाड़ियां सपाट षीर्श वाली मेसा के समान है, जबकि कुछ पहाड़ियों के ऊपर से कठोर बालुका पत्थर संरचना के हट जाने के कारण डेविस का षिखरीय गोलन और ढाल पतन तीव्र गति से हो रहा है।

अध्ययन क्षेत्र में रूण्डित स्पर कगार के सभी भागों में पाये जाते हैं, जो कगार से उतरने वाली केन की सहायक सरिताओं के विषेशक अपरदन के परिणाम है। रूण्डित स्परों की उत्पत्ति समानान्तर रूप में कगार से उतरने वाली सरिताओं के तीव्र अपरदन द्वारा होता है, जो कगार की गहराई तक कर्तन करती है तथा अपनी घाटियों को अधिक गहरी कर देती है जिससे इनके मध्य का त्रिभुजाकार भाग बाहर कटक के रूप मे निकलता रहता है, जिसे रूण्डित स्पर कहते हैं। इन रूण्डित स्परों में षिखरीय उत्तलता, कगारीय मुक्त पृश्ठता, मलवा ढाल पर सरल रेखात्मकता और गिरिपदीय नतोदरता दृश्टिगोचर होती है। कहीं कहीं रूण्डित स्पर अत्यंत तीक्ष्ण रूप में निकले हुये दिखाई पड़ते हैं।

अध्ययन क्षेत्र में प्रवहित होने वाली नदियां ने निचली जलोढ़ सतह तीव्र ढाल वाली कगारी सतह एवं मध्यम ढाल की पठारी सतह पर भिन्न भिन्न प्राकृतिक विषेशताओं वाली घाटियों का विकास किया है, जिनमें स्थलाकृतिक विशम विन्यास मिलते हैं। यहां पर विद्यमान विभिन्न घाटियों में विस्तीर्ण छिछली घाटियां विसर्पी घाटियां, जलोढ़ पूरित घाटियां गार्ज आदि पाये जाते हैं।

सरितायें निम्नवर्ती जलोढ़ मैदानों में लम्बवत अपरदन की अपेक्षा पाष्र्ववर्ती अपरदन अधिक करती है तथा विस्तीर्ण छिछली घाटियों का निर्माण करती है। यह स्थिति अध्ययन प्रदेश के पष्चिमी भाग में अधिक दृश्टिगोचर होती है जिनके किनारों पर षेल संरचना स्पश्ट दृश्टिगोचर होती है। मन्द ढाल अधिक अवसादभार एवं निम्न परिवहन वेग के कारण यहां सरितायें जलोढ़ सतह पर विस्तृत विसर्पों की रचना करती हैं। अध्ययन प्रदेश की सरिताओं में वी आकार की घाटियों एवं गार्जों के रूप में विकास हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में घाटी के अन्दर घाटी, षैले स्ास्तर वेदिकायें, अधः कर्तित विसर्प और गार्जों का विकास मध्यवर्ती पठार पर हुआ है, जो स्थलाकृतिक विशम विन्यास का उदाहरण प्रस्तुत करती है। ऊपरी भाग में पूर्ववर्ती अपरदन चक्र की चैड़ी घाटियां तथा सबसे निचले भाग में नवीन घाटियां हैं। बासा की सहायक सरिता गोसाडो जलप्रपात का निर्माण करने के बाद गार्ज की रचना करती है जहां गार्ज बहुचक्रीय घाटी तथा गार्ज के ऊपर की चैड़ी घाटी पूर्ववर्ती अपरदन चक्र की घाटी से है। केन, बासा, सिमरडा आदि नदी घाटियां पठारी भाग में कई तल्लों वाली घाटियां है, जिनका अलगाव षैल संस्तर वेदिकाओं द्वारा होता है। यहाँ नदियों पर स्थित प्रपात निरन्तर पीछे हटते जा रहे हैं, जिससे इनके पृश्ठवर्ती भाग में संकरे, गहरे एवं सर्पाकार गार्ज की रचना हो रही है।

अध्ययन क्षेत्र में जहां पर शेल चट्टानों का विघटन एवं वियोजन अधिक हुआ है तथा विघटित और वियोजित ढीली मृदा गिरिपदीय भागों में निक्षेपित होकर मोटी परत का निर्माण करती है एवं जिसमें कंकड़ पत्थर के टुकड़े और बजरी भी मिले रहते है, वहां पर बीहड़ निर्माण की प्रक्रिया अधिक हुई है। कमजोर मृदा ग्रीश्मकाल में अत्यधिक ताप के कारण ढीली होकर प्रसरित हो जाती है तथा वर्शाकाल में तीव्र गति से वर्शा का जल ढीली मृदा पर जलीय तूफान सदृष कार्यरत होता है, जिसके कारण धरातल पर अंगुल्याकार लघु अवनालिकाओं का विकास हो जाता है तथा जिसके कारण ढीली मृदा तीव्र गति से प्रवाहित होकर नदी नालों में चली जाती है परिणामतः उर्वर भूमि अनुउर्वर क्षेत्रों में प्रवाहित हो जाती है और बीहड़ क्षेत्रों का स्वरूप प्रकट करती है। इस प्रकार के बीहड़ अध्ययन प्रदेश के पष्चिमी भाग के गिरिपदीय भागों में अधिक पाये जाते है, जहां सिमर्डा और उसकी सहायक सरितायें पठार से उतरकर के नदी के रूप में प्रवाहित होती है। कैमूर से आगे बासा सरिता के किनारे स्थित बीहड़ प्रदेश इतने विस्तृत और जटिल है कि उनमें चले जाने पर मार्ग का पता लगा पाना कठिन हो जाता है,

क्योकिं निरन्तर अपरदन करने के कारण लघु अवनालिकायें गहरे खड्डो में परिवर्तित हो गयी हैं, जो एक दूसरे से मिलकर बीहड़ प्रदेश का निर्माण करती हैं। बीच -बीच में स्थल के उठे हुये भाग टीलों के रूप में द्रष्टिगोचर होते है, जिन पर वनस्पतियां है, जिन्हें यहां के चरवाहों ने निर्ममता से काटकर अपने पषुओं को खिला दिया है। ये वनस्पतियां वर्शा काल में तो कुछ हरी भरी दिखती है परन्तु षुश्क काल में सूखी हुई दिखाई देती है और भौतिक अपक्षय में वृद्धि करती है। इस भाग में कगार के आधारीय क्षेत्रों में कगार निवर्तन एवं सरिता अपरदन के कारण गिरपदीय बीहड़ों का विकास हुआ है जो मूलतः अपरदित शैलों पर विकसित है। बीहड़ पठार केंद्रो के चतुर्दिक द्रष्टव्य हैं।

निष्कर्ष

किसी भी उत्थित भू-भाग पर विभिन्न अपरदनात्मक प्रक्रम कार्य करना प्रारंभ करते हैं प्रारंभ में उत्थान की गति तेज होती है और अपरदन की गति मंद होती है, कालान्तर में उत्थान रूक जाता है और अपरदनात्मक प्रक्रम सक्रिय रहते हैं जिसके कारण संपूर्ण उत्थित भूभाग अपरदित होकर एक आकृतिविहीन समप्राय मैदान में परिवर्तित हो जाता है, जिस पर यत्र-तत्र टीले दिखाई पड़ते है जिसे मोनाडॅनाक कहा जाता है। मोनाडॅनाक वास्तव में नदी अपरदन चक्र के अंत में निर्मित समप्राय मैदानों पर दिखाई देने वाले छोटे छोटे प्रतिरोधी षैलें है जो कि अपरदन के अवषेश होते हैं। ये समप्राय मैदानों पर ऊंचे उठे दीप के समान दिखाई देते हैं इस तरह ऊंचे उठे भागों को मोनाडॅनाक कहा जाता है जब किसी भी भू भाग में स्थल खण्ड में उत्थान होता है तो उस पर विभिन्न अपरदनात्मक प्रक्रप कार्य करना प्रारंभ कर देते है। यह उत्थित भू-भाग युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और जीर्वावस्था की अवस्थाओं से गुजरता है तथा समप्राय मैदान में परिवर्तित हो जाता है, जिस पर भी कुछ कठोर षैल संरचनायें यत्र-तत्र लघु पहाड़ियों के रूप में विद्यमान रहती है, जिन्हें मोनाडॅनाक कहा जाता है। अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी एवं उत्तरी पष्चिमी क्षेत्र में इस प्रकार के अनेक मोनाडॅनाक पाये जाते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Morisawa, M, 1981 : Fluvial Geomorphology (edited), George Allen and Unwin, London ."*
2. *Morisawa, M, 1985 : Rivers (Forms and Processes), Longman, London and New York.*
3. *King, L.C., 1953 : Canons of landscape evolution, Geol. Soc. Amer. Bull., Vol. 64, pp. 721-752.*
4. *King, LC., 1963 : South African Scenery, Oliver and Boyd, Edinburgh.*
5. *King, L.C., 1967 : Morphology of the Earth, 2nd edn., Edinburgh, Oliver and Boyd.*
6. *Hack, J.T., 1960: Interpretation of erosional topography in humid temperate regions, American Journal of Science, Vol. 258 A, pp. 80-97.*
7. *Hack, J.T., 1965 : Geomorphology of Shenandoah valley, Virginia and West Virginia and origin of residual ore deposits, U.S. Geol. Surv. Professional Paper, 347.*
8. *Hack,J.T., 1975: Dynamic equilibrium and landscape evolution, in Theories of Landform Development, edited by W.N. Melhorn and R.C. Flemal, George Allen and Unwin.*
9. *Davis, W.M., 1894 Physical geography as a University study, Journal of Geology, Vol. 2, pp. 66-100.*
10. *Davis, W.M., 1899 : The peneplain, originally written in reply to a paper by Professor R.S. Tar on the same subject. Reprinted with numerous minor changes.American Geologist, Vol. 23, pp. 207-239, also in Geographical Essays.W.M. Davis, edited by D.W. Johnson, Dover Publications, INC. (1909), pp. 350-380.*
11. *Davis, W.M., 1909 : Geographical Essays, Ginn and Co. Boston, New York, London*
12. *Schumm, S.A.,1960 : The shape of alluvial channels in relation to sediment type, U.S. Geological Survey Professional" Paper 352B, pp. 17-30*
13. *Schumm, S.A.,1963a : Sinuosity of alluvial rivers on the Great Plains, Bull. Geo!. Soc. Amer. Vol. 74, pp. 1089-1100*
14. *Schumm, S.A.,1977 : The Fl uvial System, John Willy and Sons, New York.*